WOMEN STUDIES

उषा प्रियंवदा के उपन्यासों में स्त्री-इतिहास

डॉ संध्या ई एन
(Dr. Sandhya E.N)
Assistant Professor
Department of Hindi
क्राइस्ट कॉलेज ऑटोनॉमस (Christ College autonomous)
इरिंजालकुडा, (Irinjalakuda)
E-mail: sandya847@gmail.com

सारांश:

इतिहास गवाह है कि सामाजिक हो या सांस्कृतिक इतिहास में नारी को पर्याप्त स्थान नहीं मिला है। तथाकथित इतिहास में उपेक्षित स्त्री इतिहास को ढूंढ निकालने का दायित्व स्त्रियों ने अपने कंधों पर ले लिया। स्त्री-शाक्तीकरण एवं स्त्री-जागरण के संदर्भ में नारियों ने अपना इतिहास रचने की आवश्यकता पर ध्यान दिया। स्त्री मुक्ति एवं स्त्री वाद के उद्भव इस संदर्भ में हुआ है और साहित्य में भी 20वीं सदी के अन्तिम दौर पर स्त्री लेखन या स्त्री विमर्श के रूप में स्थान प्राप्त किया। साहित्य के अन्य विधाओं में से उपन्यास इसलिए ही महत्वपूर्ण है कि जीवन को समग्रता के साथ प्रस्तुत करने का ताकत इसमें निहित है। स्त्री लेखिकाओं ने अपने उपन्यासों के द्वारा तत्कालीन स्त्री समाज के इतिहास ही प्रस्तुत करने की कोशिश की है। इस संदर्भ में हिंदी के महान लेखिका उषा प्रियंवदा के उपन्यासों को हम देख सकते हैं। उनके तीन उपन्यासों में समाज के विभिन्न स्तर के स्त्रियों के जीवन के ज़रिए तत्कालीन समाज के स्त्री-इतिहास को ही प्रस्तुत करने का प्रयास हुआ है। सुषमा, राधिका,

अनुका तीनों पात्र विभिन्न समय के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक परिवेश में स्त्री जीवन को दर्शाया गया है। शिक्षा के जरिए जीवन में आगे बढ़नेवाली नायिकाएं पुरुषवर्चस्ववादी समाज में स्त्री किस प्रकार अपना अस्तित्व बनाए रखता है,इसका उदाहरण है। अपनी मृदुल भावनाओं को छोड़कर जीवन की व्यावहारिक पक्ष पर अपनी अस्मिता ढूंढने वाली स्त्री की खोज उपन्यासों में व्यक्त होता है। जीवन में नई दिशा ले जाने वाली स्त्रियों की ताकत भी उपन्यासों में प्रस्तुत है। उपन्यासों में स्त्री का आत्मसंघर्ष, अकेलापन स्त्री के प्रति समाज के दृष्टिकोण आदि पर चर्चा हुई है ।समय-समय में स्त्री जीवन में होने वाले क्रमिक विकास को इन उपन्यासों में देख सकते हैं।

बीजशब्द - स्त्री - इतिहास - अस्मिता संघर्ष - आत्म सम्मान - आत्म निर्भरता

धरती पर रहनेवाले सभी जीव-जन्तुओं का अपना इतिहास होता है। सामान्यतया मानव इतिहास में युद्ध, विनाश, जय-पराजय आदि को ही प्रमुख स्थान मिला है। इनमें भी काफी तौर पर पुरुष-केन्द्रित इतिहास ही मिला है। इतिहास में स्थान न मिलनेवालों में स्त्री एवं दलित शामिल हैं।

इतिहास के पन्ने पलटने पर राजाओं की वीर गाथाएँ मिलती है, अपवाद के रूप में एकाध आरतों की भी। लेकिन जन सामान्य की जीवन-गाथाएँ, उनकी आकांक्षाएँ, संघर्ष आदि कहीं नहीं देख सकते। कुसुम त्रिपाठी के शब्दों में "हमारे मानव समाज के इतिहास में हमेशा जन इतिहास को उपेक्षित किया गया है, इसी जन इतिहास में नारी इतिहास भी शामिल है, जिसे सामंतवादी बुर्जुआ इतिहासकारों ने अपने लेखन में जगह नहीं दी। इतिहास के पन्नों से नारियों का ज़िक्र तक अदृश्य कर दिया गया, जिन गिनी चुनी नारियों का ज़िक्र इतिहास में किया जाता है, वे इतनी सशक्त थी कि उन्हें इतिहास के पन्नों से हटाना मुश्किल था, इसलिए उन्हें इतिहास में थोड़ी बहुत जगह मिली, पर उस तरह नहीं, जिस तरह पुरुष - महापुरुषों को मिली है, उन्हें महिमामंडित किया जाता है।"[1] नारियों का इतिहास प्रस्तुत करना इसलिए ही अपना दायित्व मानकर स्त्री-लेखिकाओं ने अपना इतिहास प्रस्तुत करने की कोशिश की है। नारियों ने उपेक्षितों का इतिहास लिखना शुरू किया एवं इतिहास के पन्नो में अदृश्य औरतों को प्रकाश में लाने का प्रयास किया है।

 ISSN: 2582 - 2594

स्त्री जागरण एवं शाक्तीकरण के संदर्भ में स्त्रियों ने अपने इतिहास की आवश्यकता पर ध्यान दिया। इतिहास की धाराओं में स्त्री-जीवन का इतिहास ढूँढ निकालने का प्रयास नहीं हुआ था, उसकी ओर उपेक्षा की भावना ही रही थी। "कुछ राजखराने की स्त्रियों अथवा प्राचीनकाल में प्रसिद्धि प्राप्त स्त्रियों अथवा, राजनीतिक आन्दोलनों से जुडी कुछ गिनी-चुनी स्त्रियों को छोड दें तो अन्य स्त्रियों को शामिल करने का प्रयत्न इतिहास लेखन में दिखाई नहीं देता।"[2] इसलिए ही अपने इतिहास रचने का प्रयास नारियों की ओर से हुआ है।

इतिहास चाहे वह सामाजिक हो या साहित्यिक इसमें नारी को पर्याप्त स्थान नहीं मिला है। साहित्येतिहास में भी उनकी उपेक्षा की है। डॉ. सुमन राजे के शब्दों में "इतिहास के परिप्रेक्ष्य में जब हम स्वयं को देखते है तो हमारा स्वयं अत्यन्त लघु हो जाता है। विराट इतिहास में हमारा अस्तित्व ठीक ठीक एक बिन्दु के बराबर तो नहीं।"[3] इसलिए महिला लेखिकाओं की भूमिका ढूँढ निकालने का दायित्व नारी इतिहासकारों ने निभाया है। हिन्दी साहित्येतिहास के संदर्भ में लिखा हुआ 'हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास' इसका एक उदाहरण है। आधा इतिहास की लेखिका सुमन राजे के शब्दों पर ध्यान दीजिए "वैसे तो स्त्रियों के साथ अन्याय होता आया है, और कब तक होता रहेगा, कहा नहीं जा सकता। उन सबसे लडना मेरे लिए संभव नहीं, इसलिए मैं ने फैसला किया कि अन्याय के विरुद्ध यह लडाई साहित्येतिहास के भीतर रखूँगी, यह मानते हुए कि हर लडाई हमें आत्मसाक्षात्कार की ओर भी ले जाती है, ले जाएगी।[4]" इससे इतिहास लेखन की ज़रूरत स्पष्ट होती है और स्त्रियाँ उस ज़रूरत की पूर्ति के लिए संघर्ष करती रही।

समाज में नारी अस्मिता को बनाये रखने के लिए अपनी स्थिति पर सोचना एवं आवाज़ उठाना ही अनिवार्य बन जाता है। स्त्री मुक्ति के लिए स्त्रीवाद का उद्भव इस संदर्भ में हुआ है। परिवार एवं समाज में स्त्रियों के साथ होनेवाले अन्याय पर विचार होने लगा। पश्चिम में उभरे स्त्री आन्दोलन एवं स्त्री विमर्श का प्रभाव भारत पर पड़ा। "पश्चिम में नारी-मुक्ति आन्दोलन की शुरूआत सन् 1920 में समान अधिकार के मुद्दे को लेकर हुई जो बाद में नौकरी के क्षेत्र में, घरेलू कार्यकलापों में, कानूनी संबन्धों में और सांस्कृतिक प्रथाओं के साथ-साथ मूलभूत लैंगिक समानता के एक आमूल परिवर्तनवादी आन्दोलन के रूप में उभरकर आई।"[5] नारी मुक्ति आन्दोलन 1960 के समय सशक्त रूप धारण किया। आर्थिक, राजनीतिक सांस्कृतिक धरातल पर

स्त्री की समस्याएँ देखने लगी। इस संदर्भ में सीमोन द बोउवार, बेट्टी फ्रेडन, जर्मेन ग्रियर आदि स्त्रीवादी विचारकों का लेखन महत्वपूर्ण हो जाता है। उत्तर संरचनावाद की चर्चा के दौरान स्त्रीवाद की चर्चा ज़ोरों पर पहुँचने लगी।

हिन्दी साहित्य में बीसवीं सदी के अन्तिम दौर में स्त्रीवादी लेखन स्त्री-विमर्श के रूप में स्थान प्राप्त किया है। महिला रचनाकारों ने स्त्री को केन्द्र में रखकर स्त्री जीवन की समस्याओं को यथार्थ के धरातल पर प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। महिला लेखन के बारे में रोहिणी अग्रवाल कहती है "स्त्री-लेखन स्त्री की आकांक्षाओं का दर्पण है, वह मुक्त स्त्री के प्रारूप को प्रस्तुत नहीं करता। स्त्री मानस के तलघट को बिना किसी छेडछाड के सामने रखता है जहाँ व्यवस्था के विरोध में उफनती हुंकारों के साथ व्यवस्था में परित्राण पाने की बेचारगियाँ भी है, भेड की तरह जिबह होने की यंत्रणा भी है, भेडिया बनकर दूसरों को लील जाने की कुटिलाताएँ भी हैं। इसे मानवीय दुर्बलताओं की नैसर्गिक अभिव्यक्ति कहिए या अन्तर्विरोधों का। स्त्री लेखन पारम्परिक 'माइंडसेट' से लडने की कोशिश में परम्परा और 'माइंडसेट' दोनों की ताकत को एक ठोस सामाजिक मानसिक सच्चाई और चुनौती के रूप में सतह पर लाता है।"[6] महिला लेखन में नारी मन की समस्त भावों को परखकर, उसकी अभिव्यक्ति देने के साथ परंपराबद्ध मान्यताओं से मुक्त कराने का प्रयास भी होता है।

साहित्यिक विधाओं में उपन्यास इसलिए ही महत्वपूर्ण है कि इसमें समग्रता के साथ जीवन यथार्थ का चित्रण होता है। हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में अनेक महिला लेखिकाएँ है जो नारी जीवन के सभी पक्षों को सच्चाई के साथ प्रस्तुत करती हैं। स्त्री जीवन के विभिन्न पडाओं की अभिव्यक्ति के ज़रिए समकालीन उपन्यास तत्कालीन स्त्री की सामाजिक सांस्कृतिक पहचान होती है, उपन्यासों के पन्नों से इतिहास की ओर उन स्त्री पात्रों को ले जा सकता है। स्त्री के अन्तः सघर्ष सामाजिक धरातल पर उनकी प्रगति इन तत्वों की अभिव्यक्ति उषा प्रियंवदा के उपन्यासों में हुई है। उषाप्रियंवदा के उपन्यास नारी जीवन की त्रासद स्थितियों का बयान है। उन्होंने यथार्थ के धरातल पर स्त्री मन की अनुभूतियो को अंकित किया है। उनके उपन्यास 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' (सुषमा). 'रुकोगी नहींराधिका' (राधिका), एवं 'शेषयात्रा' (अनुका) हमें स्त्री चेतना के विकास के भिन्न पडाओं से परिचय कराते हैं।

 ISSN: 2582 - 2594

उषा प्रियंवदा का पहला उपन्यास है 'पचपन खम्भे लाल दीवारें'। इसका प्रकाशन 1961 में हुआ है। तत्कालीन समाज की शिक्षा प्राप्त नौकरीपेशा युवतियों की जीवन समस्याओं का चित्रण इस उपन्यास में हुआ है। आर्थिक स्तर पर आत्मनिर्भर होने पर भी स्त्री होने के कारण उपन्यास के मुख्य पात्र सुषमा को स्वतंत्र रूप से जीवन बिता नहीं सकती है। सुषमा जो है अपना परिवार का भार अपने कंधों पर रखनेवाली है। परिवार के प्रति दायित्व निभाने में सुषमा सफल हो जाती है और समाज में मान्यता भी मिलती है। फिर भी प्रेम विवाह आदि से वंचित हो जाती है। नील नामक युवक से प्रेम तथा विवाह की आशा होती है लेकिन सामाजिक एवं पारिवारिक समस्याओं के कारण सब कुछ छोड़ देना पडता है। सुषमा तत्कालीन समाज की नोकरीपेशा युवतियां का प्रतिनिधि है जो अपने पारिवारिक दायित्व के बीच वैवाहिक जीवन त्याग कर देता है।

उपन्यास की नायिका सुषमा जीवन के सभी क्षेत्रों मे स्वतंत्रता चाहती है। लेकिन हर तरफ से परेशानियाँ ही मिली। कॉलेज की प्राध्यापिका, वार्डन इन पदों की गरिमा है, फिर भी सुषमा आपको अधूरा, अकेली महसूस करती है। आर्थिक सुरक्षा के बावजूद पारिवारिक बोझ उठानेवाली युवति के रूप में अपने स्वप्न एवं आकांक्षाएँ बलि देनेवाली सुषमा से समाज के अनेक युवतियों का परिचय मिलता है। परिवार की रक्षा करनेवाली सुषमा स्त्रियों की आत्मनिर्भरता की ओर भी संकेत देती है। परिवार के लिए जो कुछ करती है, मन लगाकर ही करती है। सुषमा का कथन है "अगर में सबसे बडा लडका होती, तो क्या न करती? उसी तरह में अब भी करती हूँ। इन लोगों के लिए कुछ करके मन में बड़ा संतोष सा होता है।"[7] इन वाक्यों में आत्मनिर्भर सुषमा का आत्मविश्वास एवं प्यार झलकती है। ये तो अपने परिवार को संभालनेवाली सक्षम स्त्री का प्यार भरा शब्द है। सुषमा परिवर्तित परिवेश में अपने पैरों पर खडे होनेवाली युवति की प्रतिनिधि है। सुषमा तो शादी करना चाहती है पर नहीं कर पाती है। परिवार उसके लिए प्रतिबन्ध बन जाता है, माँ भी। अपने को संभालते हुए सुषमा कहती है - "जीवन में बहुत महत्वपूर्ण काम सिर्फ विवाह तो नहीं।"8 आर्थिक संकट के कारण ही सुषमा के परिवार उसकी शादी नहीं कर पाती है। समाज में ऐसे भी अनेक स्त्रियाँ है जो अपनी कामनाओं को त्यागकर दूसरों की खुशी के लिए खड़ी हो जाती है। जीवन की रफ्तार में अकेलापन का अनुभव करनेवाली स्त्रियों की कहानी भी है 'पचपन खम्भे लाल दीवारें, घर की ज़िम्मेदारीयों

के बीच अपनी इच्छाओं से दूर रहनेवाली सुषमा का आत्मसंघर्ष स्त्रियो के अंतरंग की पहचान ही है। उषा प्रियंवदा के शब्दों में "सुषमा को प्रेमी नहीं चाहिए था, उसे पति की आकांक्षा भी न थी। पर कभी-कभी उसका मन न जाने क्यों डूबने लगता। अपने परिवार का सारा बोझ अपने ऊपर लिए सुषमा काँपने लगती तब वह चाह उठती कि दो बाँहें उसे भी सहारा देने को हो, इस नीरवता में कुछ अस्फुट शब्द उसे भी संबोधन करें"[9] इन शब्दो में सुषमा के आत्मसंघर्ष, अकेलापन व्यक्त हो जाता है। उसकी स्थिति की पहचान और उस स्थिति में सहभागिता लेनेवाले कोई नहीं है।

स्त्री-मानस की आकाक्षा एवं खुलकर जीने की कामना भी सुषमा में दिखाई पडती है। सुषमा नील के साथ घूमने फिरने लगी तो सारे लोग उस पर बातें टिप्पणी देने लगी। सारी विषमताओं के बीच अकेली पडी सुषमा इन परिस्थितियों से लड़ने की कोशिश की। सुषमा अपनी सहेली मीनाक्षी से कहती है "मैं अपना काम ठीक करती हूँ. मुझसे किसी की शिकायत नहीं है. फिर मेरे व्यक्तिगत जीवन में किसी को दखल देने का क्या हक है,"[10] अकेली रहनेवाली स्त्रियों पर समाज की जो बुरी मानसिकता है इसकी ओर यहाँ सकेत है। समाज एवं परिवार की विषम परिस्थितियो से थकी हारी सुषमा नील को अपने जीवन से अनमने मन के साथ दूर कर देती है। सुषमा, अपने आपको इन प्राचीरों में बन्द करने के लिए विवश होती है। सुषमा नील से कहती है-''नौ साल से मैं इस कॉलेज में हूँ नील, पर यहाँ लोग किसी को जीने नहीं देते। इसलिए मैं तुमसे कह रही थी कि मेरी ज़िन्दगी खत्म हो चुकी है। मैं केवल साधन हूँ। मेरी भावना का कोई स्थान नही। विवाह करके परिवार को निराधार छोड देना मेरे लिए संभव नहीं। मैं ने अपने को ऐसी जिन्दगी के लिए ढाल दिया है। तुम जाओगे तो मैं फिर अपने को उन्ही प्राचीरों में बन्दी कर लूँगी।"[11], सुषमा के शब्दो में अपनी परिस्थितियों का दबाव और सामाजिक मानदण्डो से हुई निराशा प्रकट होती है। नारी को 'व्यक्ति' के रूप में नहीं, 'वस्तु' के रूप में देखने की क्रूर मानसिकता भी यहाँ स्पष्ट है। स्त्री-मन की आकुलताओं का मार्मिक चित्रण सुषमा के जरिए उषा प्रियंवदा ने किया है। जीवन के प्रति निराशा सुषमा में देख सकती है। अपने भविष्य के बारे में सुषमा सहेली मीनाक्षी से कहती है "आज से सोलह साल बाद तुम अपनी बेटी को लेकर इस कॉलेज में आओ, तब भी तुम मुझे पाओगी। कॉलेज के पचपन खभों की तरह स्थिर अचल।"[12] अपनी अपरिवर्तित जिन्दगी में ऊब गयी स्त्री की निराशा इन वाक्यों में प्रकट होती है।। उपन्यास के अन्त में नील

 ISSN: 2582 - 2594

के विदेश जाने का समाचार पाकर सुषमा एयर्पोट जाने के लिए टैक्सी मंगवाती है लेकिन अन्तिम क्षण में अपना साहस छोड देती है। जीवन में कोई निर्णय लेने के लिए असमर्थ युवति होकर सुषमा खड़ी होती है। उषा प्रियंवदा के इस उपन्यास में सुषमा तत्कालीन समाजे की स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती है जो संघर्षो के बीच भी आत्मनिर्भरता के लिए प्रयत्न करती है। प्रतिकूल परिवेश में अपनी आकांक्षाओं को खो देनेवाली सुषमा अपने परिवार की प्रतीक्षा बन जाती है।

सुषमा के द्वारा लेखिका तत्कालीन समाज में स्त्री की जो स्थिति है, उसका यथार्थ प्रस्तुत करती है। सुषमा स्वतंत्र जीवन जीना चाहती थी, साथ पारिवारिक जीवन भी। इन दोनों के लिए वह कठिन संघर्ष करती थी, पर मकसद तक नहीं पहुंच पाती है। शिक्षित सुषमा नौकरी करती है, परिवार का भार संभालती है, फिर भी अपने को वह संभाल नहीं पाती। ऐसे प्रतिबन्धों में जकडी स्त्री का चित्र उपन्यास प्रस्तुत करता है।

'रुकोगी नहीं राधीका' उषा प्रियंवदा का दूसरा उपन्यास है। 1967 में इसका प्रकाशन हुआ है। इस उपन्यास में स्त्री का सशक्त चेहरा सामने आती है। 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' की सुषमा सामाजिक विधि निषेधों के आगे अपनी आकांक्षाएँ त्याग देती है। इससे भिन्न तेवर के साथ 'रुकेगी नहीं राधिका' की नायिका अपने में स्वतंत्र दिखाई पडता है। विदेशी शिक्षा एवं संपर्क से मज़बूत राधिका अपनी इच्छा के आगे अन्यों को टुकराने लगती है। अकेले जीने की ताकत भी उसमे है। राधिका ऐसी लडकियों का प्रतिनिधि है जो अपनी इच्छा के अनुसार जीवन बिताने में सक्षम है। राधिका आत्मविश्वास भरी लडकी है, कहीं भी परपराबद्ध नहीं। अपने पिता की इच्छा के विरुद्ध भी राधिका पढाई के लिए अमरिका चली जाती है। विदेश में जाकर पढना तत्कालीन समाज के विद्यार्थियों के लिए स्वप्न की बात होती, उसे मूर्त रूप देने की चाह में अपने विदेशी मित्र डैन के साथ राधिका अमरिका चली जाती है। पिता की दूसरी शादी से एकदम विचलित राधिका डैन के सलाह-मशविरा ग्रहण करके अमरिका चली जाती है। वहाँ का जीवन उसे आत्मनिर्भर बना देता है।

तत्कालीन भारतीय सामाजिक सांस्कृतिक परिवेश को दिखाने का प्रयत्न लेखिका करती हैं। उसके लिए राधिका के साथ की पुरुष पात्रों को प्रस्तुत करती है। उनमें अक्षय, मनीश, बड'दा, डैन आदि प्रमुख है। पाश्चात्य समाज जीवन और सोच विचार

कितना खुला एवं सुलझा है; इसे लेखिका डैन के जरिए दिखा देती है। डैन का कथन है- "मैं तुम्हें रिजक्ट नहीं कर रहा हूँ। मुक्त कर रहा हूँ। तुम्हें अपने साथ चलने के लिए इस कारण नहीं कहता, क्योंकि तुमने कभी, एक क्षण के लिए भी प्यार नहीं किया। राधिका, तुम मुझमें अपना पिता ढूँढ रही थी, वह पिता जिसे त्रास देने के लिए तुम मेरे नाथ चली आई थी। पर में ने तुम्हारे पिता की जगह स्थापित नहीं होना चाहा, मैं तो स्वतंत्र व्यक्तित्व हूँ। तुमसे कहना भी चाहता हूँ कि तुम बड़े होने की चेष्टा करो और जीवन से भागो नहीं, उसे दोनों हाथ फैलाकर ग्रहण करो डैन मे विवेक और तर्कबुद्धि है, संयम और खुला मन है।"[13] जिसके द्वारा वह अपने में सिमटी राधिका की मानसिकता का संशोधन करता है। अक्षय भारतीय परम्परागत समाज का प्रतिनिधि पात्र है. खुला मन नहीं है। उपन्यास में अक्षय सोचता है ''चाहे भारत कितना उन्नत क्यों न हो गया हो सामाजिक परिवेश अभी उतना नहीं बदला, बदलने में अर्धशति तो बीतेगी ही"[14] राधिका को खुले मन स्वीकार नहीं कर पाता है। उपन्यास कहता है "सच तो यह है कि वह भुला नहीं सकता कि एक वर्ष तक राधिका उस पत्रकार की पत्नी बनकर रह चुकी है।, खुल्लम-खुल्ला, और उसके बाद दो वर्षों में जाने कितने वह खुलकर राधिका से नहीं पूछ सकता। पर बाद में जब भी राधीका का कोई पूर्व-परिचित मिलेगा, तो अक्षय को संदेह के दश विकल कर देगे! वेसे ही जैसे मनीश और राधिका का सहज, खुला मैत्रीपूर्ण आचरण देखकर प्राय अक्षय के मन में यह विचार आ जाता है कि क्या मनीश भी राधिका का प्रेमी रह चुका है?"[15] स्त्री पुरुष सबन्ध के प्रति समाज के दृष्टिकोण मे कोई बदलाव नहीं आया है। बदलते स्त्री पुरुष सबन्धों को अपराध के रूप में देखने की मानसिकता की ओर यहाँ संकेत है। मनीश तो विदेशी संपर्क में आए चालाक भारतीय युवा वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। उसमें आदर्श की जगह स्वार्थ अधिक है, हर कहीं अपना लाभ ढूँढता है। इन सब से अलग होकर अपनी सुविधा में मात्र ध्यान देता बड'दा है, जिसे बहिन के जीवन से कोई सारोकार नहीं है। उपन्यास बताता है "उसने अपने परिवार के दोनों पुरुषों पापा और बड़'दा को घोर व्यक्तिवादी, कुछ हदों तक स्वार्थी महत्वाकाक्षी पाया था। स्त्रियों का आदर करते थे, उन्हें स्वतंत्रता भी देते थे पर वहीं तक उनके द्वारा निर्मित सीमा-रखा न लांघी जाए।"[16] संयुक्त समाज में अपनी अस्मिता का संघर्ष राधिका जारी रखती है, इस यथार्थ का अंकन उपन्यास करता है।

अपने जीवन को अपने इच्छानुसार मोड़ने की हिम्मत राधिका में है। राधिका

 ISSN: 2582 - 2594

अपनी जिन्दगी अन्य किसी के अनुसार जीना पसन्द नहीं करती, और लडकियों को अपने में स्वतंत्र एवं चरित्र में पूर्ण विकास की कामना करती है। माता-पिता से अलग रहनेवाली राधिका पर विदेशी सभ्यता का आरोप लगाता है तो राधिका अपना विचार इस प्रकार प्रकट करती है "तभी तो हमारे यहाँ कितनी लडकियों का चरित्र पूर्णता विकसित हो पाता है? माता पिता अपने ही विचारों को उन पर थोपते रहते हैं। रहा मेरा सवाल, मैं स्वेच्छापूर्ण जीवन की इतनी आदी हो गई हूँ कि विघ्न सह नहीं पाती।"[17] जीवन के प्रति राधिका का दृष्टिकोण इन वाक्यों में प्रकट हुआ है। खुलकर जीने का सोच एवं उसके लिए कदम रखने की हिम्मत राधिका में है। बदलते परिवेश के अनुरूप स्त्री के सोच विचार में आया बदलाव भी राधिका के जरिए प्रकट होता है। विदेश से लौटी राधिका को कई सवालों का सामना करना पड़ा। बदलते स्त्री-पुरुष संबन्ध पर परंपरागत समाज की दृष्टि सीधी नहीं थी, नहीं है। बचपन की सहेली रमा के मन में राधिका और डैन के सबन्ध के बारे में जानने की जिज्ञासा है। रमा के प्रश्नों का उत्तर राधिका इस प्रकार देती है "कोई संबन्ध था ही नहीं। न में कोई संबन्ध करने गई थी। मैं पढने गई थी. डिग्री लेकर लौट आई।"[18] अपने ऊपर किये गये आरोपों के लिए जवाब देने का ताकत राधिका में देख सकते हैं। उपन्यास में विद्या नामक पात्र है जो राधिका की विमाता है। प्रौढ गम्बीर नारी विद्या अपनी जिम्मेदारियाँ निभाने में सक्षम है। फिर भी अकेलापन की गहराईयों में डूबकर उसने मृत्यू को स्वीकार किया। विद्या की मौत के बाद राधिका को पापा से जुडने का मौका मिला, फिर भी वह मनीष के पास जाने का निर्णय लेती है।

उषा प्रियंवदा इस उपन्यास में तत्कालीन समाज में अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष करती स्त्री को दिखाती है। राधिका के द्वंद्वों को लेखिका ने बड़ी सूक्ष्मता से अंकन किया है। अपने जीवन को नयी दृष्टि से देखनेवाली युवति के जरिए स्त्री-जीवन की एक नयी दिशा हमारे सामने प्रस्तुत होती है।

'शेषयात्रा' उषा प्रियंवदा का तीसरा उपन्यास है। इसमें वैवाहिक जीवन की त्रासद समस्याओं से संघर्ष करनेवाली नायिका की बेबसी है और उसमें आस्था, शक्ति एवं सर्जनात्मकता से भरकर उसकी आत्मशक्ति एवं आत्मनिर्भरता उजागर करने का प्रयास भी है। उपन्यास में पुरुष के अत्याचार से मुक्त होकर स्वावलम्ब होनेवाली नायिका है। समाज में ऐसी अनेक स्त्रियाँ है जो विवाह के बाद जीवन में कटु अनुभवों से जूझती है, अकेली हो जाती है। निरालम्ब युवतियों का प्रतीक बनकर उपन्यास की

केन्द्र पात्र अनुका आती है। उसकी सरलता, निरीहता को उसकी मूर्खता और बेवकूफी समझकर डॉ प्रणव उससे शादी करता है। अन्य स्त्रियों के साथ संबन्ध शादी के बाद भी प्रणव जारी रखता है। अनु अपने पति को ईश्वर के समान आदर करती है और प्यार करती हैं। अनुका को दुख में धकेल कर प्रणव ने चन्द्रिका नामक युवति को जीवन साथी बना दिया। अनु अपनी जीवनयात्रा में अकेली हो जाती है। अपने मन को संभालने में भी असमर्थ हो जाती है। यह तो उपन्यास के पूर्वार्द्ध की बात है। उत्तरार्द्ध में ऐसी अनुका हमारे सामने आती है जो पुनः शिक्षित होकर डाक्टर बन जाती है. आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर होती है और दूसरा विवाह करके अपने जीवन की सारी खुशियों वापस लाती है। वैवाहिक जीवन में स्त्रियों को कई प्रकार की समस्याओं का सामना करना पडता है। अनुका पुरुष के स्वार्थ का शिकार बनकर जीने के लिए अभिशप्त अनेक स्त्रियों का प्रतिनिधि होता है। स्वाभिमान नष्ट होकर जीवन के अंधेरे में अपने को खो देनेवाली स्त्रियों की श्रेणी में अनुका नहीं आती है। पहले तो वह प्रणव के लिए कुछ भी सहने को तैयार होती है। लेकिन बाद में अपने व्यक्तित्व पर भरोसा करके जीवन में बहुत कुछ प्राप्त करती है। मृदुल भावनाओं को छोडकर जीवन की व्यावहारिक पक्ष पर बल देती है। अकेलापन से हार न मानकर जीवन को नयी दिशा की ओर ले जाने की ताकत भी अनुका में दिखाई देती है।

उपन्यास के उत्तरार्द्ध में पति के अभाव में अपने में छिपी आत्मशक्ति को ढूँढ लेती है और यथार्थ का सामना करती है। अनुका बनाई गई स्त्री है, इसलिए पति को परमेश्वर मानती है। पति से अलग होकर जीना, विधवा होना उसकी कल्पना के बाहर की बात थी। इसलिए वह प्रणव के पैरो पड़ती है। अनु प्रणव से कहती है- "मैं कुछ नहीं माँगूँगी। सच, मैं बिल्कुल दिक्कत दिए विना रह लूँगी। मोटर, बंगला, मुझे कुछ नहीं चाहिए। जो आप देगे, वह सिर-माथे पर। बस आप मुझे अपने साथ रख ले, मुझे अलग न करें। कितने लोग यो ही निभाते आए है, में पैरों पड़ती हूँ" 19 बनाई गयी स्त्री सारे दरवाजे बन्द होने पर अपनी शक्ति की पहचान करने को मजबूर होती है। अनुका भी यही करती है। अनुका यथार्थ का सामना करने का निर्णय लेती है और संघर्ष शुरू करती है।

उपन्यास में दिव्या नामक पात्र है जो अनुका की बचपन की सहेली है जिसके माध्यम से लेखिका ने पढ़ी-लिखी, आत्मनिर्भर, जीवन के प्रति व्यावहारिक दृष्टिकोण रखनेवाली युवति का परिचय दिया है। दिव्या की सहायता से ही अनुका जीवन में

 ISSN: 2582 - 2594

विजय हासिल की है। अनुका को हीनताबोध से बाहर निकालने में दिव्या की भूमिका ध्यान देने योग्य है। दिव्या अनुका से कहती है "तुम बेपढी हो? हाईस्कूल इंटर में फस्ट डिविज़न मेरा आया था? मेरिट लिस्ट में मैं थी? तुम कब तक अपने को घटाती रहोगी। तुम्हें अवसर मिलता तो तुम भी डॉक्टर हो सकती थीं। अनु तुमसे किसी चीज़ की कमी नहीं है। माई गॉड, वुमन, अपने को देखो तो जरा।"[20] इस प्रकार दिव्या ने अनुका में आत्मसम्मान भरने का प्रयास किया। ज़िन्दगी को अपनी इच्छानुसार बदलने की हिम्मत और निश्चयात्मकता से अनुका मेडिकल कॉलेज में एडमिशन पाकर नोबेल प्राइज विजेता के रिसर्च टीम में डॉक्टर के रूप में स्थान पाती है।

उषा प्रियंवदा ने इस उपन्यास में स्त्री-जीवन की विडंबनाओं को गहराई तक प्रस्तुत करके इससे मुक्ति का रास्ता भी खोल दिया है। दीपांकर से विवाह करने का निर्णय सोच समझकर ही अनुका लेती है। जीवन में पति-पत्नी संबन्ध आपस में पूरक है। बराबरी का सोच अनुका में होता है "अगर दीपांकर इस सबन्ध के लिए उत्सुक है तो वह भी निर्णय ले चुकी है, अब पीछे हटने का सवाल नहीं उठता। दीपांकर उसे हर तरह से सुखी रखने की कोशिश करेगा, वह जानती थी। वह अपने लिए महत्वाकांक्षी नहीं था, पर अनु को वह कभी कोई निर्णय लेने से नहीं रोकेगा। यह होगी बराबर की साझेदारी, न कोई बडा. न छोटा, न सुपीरियर, न इन्फीरियर"[21] स्त्री-पुरुष संबन्चो मे समानता की आकांक्षा इन वाक्यों में झलकती है। लेखिका ने अनुका के ज़रिए एक साधारण भोलीबाली लडकी का परिचय दिया साथ ही साथ अनुका का सशक्त आत्मनिर्भर चित्र भी खींचा। तत्कालीन समाज का परिचय एवं शिक्षा प्राप्त करके समाज की मुख्यधारा में पुरुषों के साथ चलनेवाली स्त्रियों का परिचय भी उपन्यास देता है। अनुका नामक युवति को केन्द्र पात्र बनाकर अपने समाज में संघर्ष करनेवाली स्त्रियों को आवाज़ देने का प्रयत्न किया गया है। नयी दिशा की ओर चलनेवाली नारी जीवन गाथा भी उपन्यास में अंकित है।

उषा प्रियंवदा के तीन उपन्यासों में विभिन्न समय के सामाजिक, सांस्कृतिक आर्थिक परिवेश में स्त्री जीवन की चर्चा की है। वास्तव में ये स्त्री मन की आकाक्षाओं के शब्द चित्र है। समय-समय में स्त्री जीवन में होनेवाले क्रमिक विकास को इन उपन्यासो में देख सकते है। महिला लेखिकाएँ स्त्री इतिहास को प्रस्तुत करके इतिहास में अपनी जगह ढूँढ लेने का प्रयास करती है। सुषमा, राधिका, अनु-तीनों पात्र जीवन

में विभिन्न प्रकार की समस्याओं से गुजरती है। सुषमा राधिका और अनुका के जरिए लेखिका तत्कालीन समय के नारी जीवन के विकास को अंकित करने का प्रयास किया गया है। परिवेशों में जो भिन्नता है. वह मात्र संरचना पक्ष को मौलिक बनाने के लिए है। इसके साथ इन तीन उपन्यासों में स्त्री का आत्मसघर्ष, अकेलापन, स्त्री के प्रति समाज के दृष्टिकोण आदि पर भी प्रकाश डाला गया है। शिक्षा नौकरी प्राप्त सुषमा का आत्मसंघर्ष, विदेश से वापस आयी राधिका का व्यक्तित्व, डॉक्टर अनुका में बदली अनु की आत्मनिर्भरता ये तो स्त्री-इतिहास के पन्नों पर अपना स्थान प्राप्त करते हैं।

सदर्भ:

1. कुसुम त्रिपाठी - औरत, इतिहास रचा है तुमने - कल्याणी शिक्षा परिषद् -नई दिल्ली सं - 2010 -पृ. सं. 15,16
2. कुसुम त्रिपाठी -औरत, इतिहास रचा है तुमने--कल्याणी शिक्षा परिषद् -नई दिल्ली सं - 2010 - भूमिका से
3. डॉ. सुमन राजे -हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास - भारतीय ज्ञानपीठ सं - 2004- पृ. सं. 7
4. वही, वही, पृ. सं. 11
5. डॉ. शोभा निंबालकर पवार- हिन्दी कहानी और नारी विमर्श - मानसी पब्लिकेशन्स नई दिल्ली, सं - 2009- पृ. सं. 21
6. रोहिणी अग्रवाल- स्त्री लेखनः स्वप्न और संकल्प- राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, सं 2011- भूमिका से
7. उषा प्रियंवदा -पचपन खम्भे लाल दीवारें - राजकमल प्रकाशन प्रा.लि नई दिल्ली, सं 1987- पृ. सं. 11
8. वही, वही, पृ. सं. 10
9. वही, वही. पृ. सं. 26
10. वही, वही, पृ. सं. 500
11. वही, वही, पृ. सं. 56-57
12. वही, वही, पृ. सं. 100
13. उषा प्रियंवदा रुकोगी नहीं राधिका - राजकमल प्रकाशन प्रा.लि नई दिल्ली. सं 1984 पृ. स. 29-30
14. वही, वही, पृ. स.41
15. वही. वही, पृ. सं.92
16. वही, वही, पृ.सं. 52
17. वहीं, वही, पृ सं. 13
18. वहीं, वही, पृ.सं. 64
19. उषा प्रियंवदी- शेषयात्रा - राजकमल प्रकाशन प्रा.लि नई दिल्ली, सं 1984 पृ.सं 63

 ISSN: 2582 - 2594

20. वही, वही, पृ. सं. 73-74
21. वही वही पृ. सं. 129

सदर्भ ग्रन्थ सूचि :

पचपन खम्भे लाल दीवारें-उषा प्रियंवदा -राजकमल प्रकाशन प्रा.लि नई दिल्ली, सं 1987

रुकोगी नहीं राधिका- उषा प्रियंवदा -राजकमल प्रकाशन प्रा.लि नई दिल्ली. सं 1984

शेषयात्रा - उषा प्रियंवदा - राजकमल प्रकाशन प्रा.लि नई दिल्ली, सं 1984

सहायक ग्रन्थ सूचि :

1. कुसुम त्रिपाठी - औरत, इतिहास रचा है तुमने - कल्याणी शिक्षा परिषद् -नई दिल्ली सं - 2010
2. कुसुम त्रिपाठी -औरत, इतिहास रचा है तुमने- -कल्याणी शिक्षा परिषद् -नई दिल्ली सं - 2010
3. डॉ. सुमन राजे -हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास - भारतीय ज्ञानपीठ सं - 2004
4. डॉ. शोभा निंबालकर पवार- हिन्दी कहानी और नारी विमर्श -. मानसी पब्लिकेशन्स नई दिल्ली, सं - 2009
5. रोहिणी अग्रवाल- स्त्री लेखनः स्वप्न और संकल्प- -राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, सं 2011